हिन्दूधर्म स्वरक्षण भी नहीं कर सका और न ही राष्ट्ररक्षण

❑ विनोबा

(तारीख 5.12.1970 : ब्रह्मविद्या मंदिर, पवनार के बुजुर्ग सदस्य श्री बालुभाई मेहता के साथ)

प्रश्न : आपने एक जगह कहा है कि हिन्दूधर्म का *अद्वैत सिद्धांत* होते हुएभी उसमें सेवाभाव का अभाव दिखायी देता है। इसका क्या कारण? क्या यह कह सकते हैं कि यद्यपि समाज ने उस तत्त्वज्ञान को बौद्धिक स्तर पर माना था, वह लोक-हृदय तक पहुंचा ही नहीं था?

हिन्दूधर्म *स्वसंरक्षण* भी कर नहीं सका और *राष्ट्ररक्षण* भी नहीं कर सका। परदेश के जो अनेक आक्रमण हिन्दुस्तान पर हुए, उन्हें रोकने की शक्ति हिन्दूधर्म में नहीं दिखायी दी। एक और भी सोचने की बात है। हिन्दूधर्म राष्ट्रीयता की भावना को जितना पोषक होना चाहिए था, उतना पोषक सिद्ध नहीं हुआ। इसका क्या कारण?

उत्तर : भारत में बहुत बड़ा तत्त्वज्ञान पनपा—अद्वैत। इससे बढ़कर तत्त्वज्ञान नहीं हो सकता। इतना होते हुए भी उस अद्वैत का परिणाम सेवारूप में होना चाहिए था, वह भारत में हुआ नहीं और सेवावृत्ति प्रधानतया ख्रिस्ती धर्म में प्रकट हुई। आधुनिक जमाने में विवेकानंद ने अद्वैत को सेवा के साथ जोड़ दिया और गांधीजी ने उसको आगे चलाया। विवेकानंद परदेश में और हिन्दुस्तान में भी बहुत घूमे थे। उन्होंने जगह-जगह देखा कि मिशनरी लोग सेवा करते हैं, हिन्दू और मुसलमान लोग वैसी सेवा नहीं करते हैं। जब उन्होंने यह देखा, तब लोगों के सामने यह बात स्पष्ट की कि हमारा सिद्धांत अद्वैत है और जहां हम सिद्धांत में अद्वैत तक पहुंचे हैं, वहां हमको सेवा करनी चाहिए। इसलिए उन्होंने जगह-जगह सेवा के मिशन भी खोल दिये।

हिन्दूधर्म से अद्वैत अर्वाचीन

सवाल यह है कि सेवा की उपेक्षा हुई, इसका कारण क्या? यह बहुत सोचने का मुद्दा है। दूसरे धर्मों का इतिहास देखें, तो वह दो-ढाई हजार सालों का है। इस्लाम 1300 साल का है, ख्रिस्ती धर्म दो हजार साल का और बाकी दूसरे धर्म भी दो-ढाई हजार साल के अंदर के हैं। लेकिन हिन्दूधर्म, जहां तक हम समझते हैं, कम से कम बीस हजार साल का है। वेद को प्रमाण मानें तो वेद का जो पुरातन हिस्सा है, वह बीस हजार साल से अर्वाचीन नहीं। गृत्समद ऋषि पर मैंने एक लेख लिखा है, उसमें इस बात का जिक्र है। बीस हजार साल का इतिहास! बीस हजार साल की परंपरा में अनेक अनुभव आये, अनेक परिवर्तन हुए। उस हालत में हिन्दूधर्म का आखिरी रूप कौन-सा, बीच का रूप कौन-सा, और पहला रूप कौन-सा, यह सब सोचने की बात हो जाती है।

अद्वैत आदि जो सिद्धांत आये, वे शंकराचार्य, रामानुजाचार्य के बाद आये। यानी 1200-1300 साल पहले की बात समझ लीजिए। 20 हजार साल के इतिहास के सामने 1200-1300 साल की बात छोटी हो जाती है। शंकर, रामानुज आये, उन्होंने पदयात्रा करके हिन्दूधर्म पर जो हमला हो रहा था, वह हटाया। हमला यह था कि हिन्दूधर्म के अनेक ग्रंथ थे, उनमें मेल-मिलाप नहीं था। उपनिषद और दूसरे ग्रंथों में मेल नहीं था, और उपनिषद के अंदर भी परस्पर भेद था। वह सारा इकट्ठा करके उन्होंने समन्वय किया। आज भी समन्वय की

...है, लेकिन वह अनेक धर्मों के समन्वय की है। उन्होंने जो समन्वय किया, वह हिन्दूधर्म के अंदर जो बेमेल था, मतभेद थे, अनेक पंथ थे, भेद थे, जिसमें हिन्दूधर्म टूटने को आगा था, उनका समन्वय किया। लेकिन यह घटना सारी 1200-1300 साल के अंदर की है।

पुत्रोऽहं पृथिव्याः दूसरा सवाल है, *हिन्दूधर्म राष्ट्रीय भावना क्यों नहीं पनपा सका? जैसे हिन्दूधर्म अति पुरातन है, और इस वास्ते उसकी अनेक फेजेस (अवस्थाएं) हुईं, वह विकसित होता गया, बढ़ता गया, वैसे जिसको हम आज हिन्दु-राष्ट्र मानते हैं, पुराने जमाने में वह विशाल खंडप्राय था। एक स्थान से दूसरे स्थान में जाना संभव नहीं था। उस हालत में भारत में एक राष्ट्रीयता कैसे आयेगी?*

भारत में एक राष्ट्रीयता की जगह एक-विश्व थी। ऋषियों का दर्शन था विश्वमानुषः। उस समय *दुर्लभं भारते जन्म* नहीं था। वह तो आधुनिक है, बाद में आया है। अथर्ववेद में तो पृथ्वीसूक्त आया है। *पुत्रोऽहं पृथिव्याः*—हम पृथ्वी के पुत्र हैं। *नाना धर्माणं पृथ्वी विवाचसं*—जिस पृथ्वी में अनेक धर्म हैं, अनेक वाणियां-भाषाएं हैं, उस पृथ्वी की हम वंदना करते हैं। यह भावना थी; लेकिन आज हम जिसको भारत कहते हैं, वह उन दिनों मालूम भी नहीं था। उस जमाने में इधर से उधर जाना भी मुश्किल था। बीच में बड़े-बड़े अरण्य पड़े थे। इस वास्ते भारत नाम का देश उनको मालूम नहीं था। लेकिन विशाल विश्व की कल्पना उनको थी। हम एक विश्व के मानुष हैं यह भावना थी। लेकिन इस कल्पना के प्रचार के लायक विज्ञान आया नहीं था। आज जैसे विज्ञान की मदद से इधर की संवेदना तुरंत उधर पहुंचती है, वैसी विज्ञान की मदद उस जमाने में नहीं थी। ऋषियों के चिन्तन की वह विशेषता थी, जिस कारण विश्व-मानुषता आयी और हम पृथ्वी के हैं, यह भाषा निकली। वह ऋषियों की प्रतिभा थी। इस वास्ते भारत पर बाहर से जो हमले हुए, वे एक देश पर हुए ऐसे कहना ऐतिहासिक नहीं। यद्यपि इसमें कोई शक नहीं कि लगभग एक-डेढ़ हजार साल हुए भारत एक माना गया, रामेश्वर से काशी तक। डेढ़ हजार साल से भारत एक है यह कल्पना दीखती है।

राष्ट्रीयता नहीं, आंतरराष्ट्रीयता

कोई भी पूछ सकता है कि राजपूतों के साथ मराठों की लड़ाई सिविल वॉर (गृहयुद्ध) कहलायी जाती है और फ्रांस के साथ इंग्लैंड की लड़ाई इंटर-नेशनल वॉर (अंतर्राष्ट्रीय युद्ध) कहलायी जाती है, वह कैसे? इंग्लैंड और फ्रांस में अंतर भी कितना है? सोचने की बात है। इतना बड़ा विशाल देश था, एक प्रांत से दूसरे प्रांत में इतना अंतर था, परस्पर कोई संपर्क नहीं था, ऐसी हालत में भारत में जो लड़ाइयां हुईं, वे सिविल वॉर नहीं थीं। लेकिन उनको सिविल वॉर कहते हैं, इसका अर्थ क्या? इसका अर्थ यह है कि भारत ने अपना इतना विशाल बड़ा देश माना। इस वास्ते हम कहते हैं कि योरप को भारत से समाजशास्त्र सीखना बाकी है, जिससे कि योरप एक हो जाये और कम से कम एकत्र व्यापार करे। वहां तो एक-एक भाषा के एक-एक राष्ट्र बने हैं और केवल व्यापार के लिए भी इकट्ठा आ नहीं सकते हैं। यह सारा देखते हैं, तो समझ में आता है कि भारत की 'राष्ट्रीयता' 'आंतरराष्ट्रीयता' के बराबर की है। इसलिए वह बनने में देर लगी।

एक विश्व की भावना होते हुए भी विज्ञान के अभाव के कारण भारत की एकता टिकी नहीं। आज सेना रखने का अधिकार केन्द्र को है, अलग-अलग प्रांतों को नहीं है। वैसी स्थिति उस समय नहीं थी। अलग-अलग राज्यों की अलग-अलग सेनाएं थीं। छोटी-छोटी सेनाएं आपस में लड़ती भी थीं। इस तरह सब चलता था। इस वास्ते जिसको हम राष्ट्रीयता कहते हैं, वह आधुनिक जमाने की है। प्राचीन जमाने में राष्ट्रीयता का सवाल उठता ही नहीं था। हम विश्व के हैं, यह भावना थी। मनु महाराज ने भी यह लिख रखा है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व-मानवाः

इस देश के श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा दुनिया के मानव अपने-अपने चरित्र की शिक्षा लेंगे। 'पृथिव्याम्'! मनु के सामने भी पृथ्वी आती है। विशाल ध्येय रखने के कारण जो नुकसान होता है, वह भारत को हुआ। छोटा ध्येय रखा होता, तो नुकसान नहीं होता। छोटे-छोटे राष्ट्र माने होते, तो बचाव होता। लेकिन व्यापक ध्येय माना और व्यापक बनने के लिए जिस विज्ञान की जरूरत थी, वह उपलब्ध नहीं था, इस वास्ते अति व्यापक ध्येय के कारण भारत हारा। भारत संकुचित विचार करता, एक-एक राष्ट्र अलग माना जाता, तो वे राष्ट्र स्वतंत्र होते और भारत बचता।

वर्ण-व्यवस्था=श्रमव्यवस्था

जहां तक सेवा का ताल्लुक है, वर्ण-व्यवस्था सेवा का उत्तम साधन माना गया था। वह टूटी और उसकी जगह जाति-व्यवस्था आ गयी। जाति-व्यवस्था यानी ऊंच-नीच भावना। वर्ण व्यवस्था में वह नहीं था। वहां सबको समान वेतन माना गया था। यानी आर्थिक क्षेत्र में समानता थी। सब कामों की समान प्रतिष्ठा मानी गयी थी। यानी सामाजिक क्षेत्र में समानता थी। और सब कर्मों के द्वारा समान मुक्ति मानी गयी थी। यानी आध्यात्मिक क्षेत्र में समानता थी। चातुर्वर्ण्य में आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक प्रतिष्ठा समान थी, इसलिए हमने लिख भी रखा है—

श्रमाची व्यवस्था म्हणजे वर्ण-निष्ठा
श्रमाची अनास्था वर्गभेद

—यदि निरपवाद रूप से श्रमनिष्ठा को अपनाते हैं, तो ऊंच-नीच भेद मिट जायेगा। वर्गभेद, क्लास वॉर वगैरह श्रम की अनास्था के कारण होता है। कुछ लोग श्रम करना नहीं चाहते, वे श्रम करते नहीं। कुछ लोग लाचारी से करते हैं, उनको श्रम करना पड़ता है। फिर उनके बीच भेद उत्पन्न होते हैं। प्राचीन वर्णव्यवस्था थी, उसमें सेवा-कार्य के लिए स्वतंत्र वर्ग निर्माण किया था शूद्रवर्ग। शूद्र का काम क्या था? सबकी सेवा करना। चारों ओर घूमते रहना, देखते रहना और जहां जरूरत हो वहां सेवा करना।

बात ऐसी है कि घर में ही कोई बीमार हो तो उसकी सेवा करने का काम घर वाले कर लेंगे। लेकिन मान लीजिए कि कोई लड़का अंधा है, उसको संभालने वाला कोई

नहीं तो उस हालत में कौन सेवा करेगा? उस हालत में, ग्राम-सभा होगी वह शूद्रों के द्वारा उसकी सेवा करेगी। प्राचीन काल में इस प्रकार से सेवा चलती होगी। लेकिन जब जातिभेद आया, शूद्र नीचे माने गये—यह भी चार-पांच हजार साल पुराना है—तबसे इस प्रकार की सेवा नीच सेवा मानी गयी। तब वर्णव्यवस्था टूट गयी। उसकी जगह दूसरी कोई व्यवस्था आया नहीं। जाति-अभिमान आ गया। उसके कारण सेवा तो टूट ही गयी, राष्ट्ररक्षा क भार उठाने वाला भी कोई न रहा। उसके पहले थोड़े लोग यानी क्षत्रिय लोग राष्ट्ररक्षा करते थे, वह भी रहा नहीं। भारत जो हारा है, वह वर्णव्यवस्था टूट गयी, उसके कारण हारा है। लेकिन वह एक कारण है।

बारूद गीली निकली : मुख्य कारण भारत में साइंस नहीं था। प्लासी की लड़ाई जहां हुई थी, वह जगह मैं देख आया हूं। बड़ी सहजता से वहां का ग्रामदान हो गया। पंडित नेहरू को जब यह पता चला, तब उन्हें मिल्टन याद आ गया। उन्होंने जाहिर व्याख्यान में कहा—"प्लासी लॉस्ट एण्ड प्लासी रिगेंड" (प्लासी खोयी, प्लासी पायी)। प्लासी यानी हमारा बिलकुल कमनसीब और देश की बदनामी! उसका ग्रामदान हुआ सुनकर उनको बहुत आनंद हुआ।

मैं वहां केवल ग्रामदान के लिए ही नहीं गया था। मैंने वहां प्लासी का रणांगण देखा। क्लाईव कहां खड़ा था, नवाब की सेनाएं कहां खड़ी थीं, सब देखा। क्लाईव ने 22 जुलाई को हमला किया था। उस समय आर्द्रा नक्षत्र रहता है। यानी जोरदार बारिश रहती है। क्लाईव की सेना पेड़ों के नीचे खड़ी थी। सामने दोनों नवाबों की सेनाएं थीं। दोनों एक हो जाते, तो 60-70 हजार की सेना हो जाती। लेकिन वे अलग-अलग थे, इसलिए एक-एक की तीस-पैंतीस हजार की सेना थी। क्लाईव की बंदूकों को दूरबीनें थीं। ताक-ताक पर गोलियां मार सकते थे। इनको तो दूरबीन नाम की चीज ही मालूम नहीं थी! उसमें भी नवाबों की बारूद बारिश के कारण सब गीली हो गयी थी। अंग्रेजों की बारूद सुरक्षित, टारपोलीन से ढंग कर रखी हुई थी। चंद घंटों में लड़ाई समाप्त हुई और बंगाल हारा।

चार कारण : अंग्रेजों की जो जीत हुई, वह सामान्यतः विज्ञान के कारण हुई। राजवाड़े (इतिहास संशोधक) ने हमारा ध्यान इधर खींचा है। पेशवे के पास सखारामबापू उनके मंत्री थे। उनकी अच्छी लायब्रेरी थी। उसमें सब हस्तलिखित पोथियां ही थीं। लेकिन उन किताबों में एक अंग्रेजी प्रिंटेड किताब भी मिली है। राजवाड़े लिखते हैं कि वह छपी हुई किताब देखकर भी उन लोगों को जिज्ञासा नहीं हुई कि यह क्या चीज है जान लें, सीख लें। उनकी जिज्ञासा-बुद्धि ही मर गयी थी, ऐसा आक्षेप राजवाड़े ने किया है। जो भी हो! लेकिन साइंस का जो नया दौर निकला था, उसका हिन्दुस्तान में अभाव था। हम हारे, वह मुख्यतः साइंस के इस अभाव के कारण।

आपस-आपस में मतभेद था, वह भी एक कारण है, लेकिन वह छोटा कारण है। यहां का व्यापारी वर्ग, सारा का सारा लूटने के सिवा और कुछ काम नहीं करता था, इसलिए व्यापारियों के लिए समाज में नफरत थी। इस वास्ते क्लाईव वगैरह आये, तब यहां का सारा व्यापार एकदम हाथ में ले सके।

भारत हारा इसके कारण, नंबर एक, व्यापारियों के लिए नफरत; नंबर दो, आम जनता की तटस्थता; नंबर तीन, इंग्लिश लोगों का साइंस; नंबर चार, भिन्न-भिन्न राज्य बने थे, उनकी आपस-आपस में लड़ाइयां।

संतों ने बचाया : यह इतिहास आपके सामने इसलिए रखा कि सारी परिस्थिति ध्यान में आ जाये। बीच के जमाने में हिन्दूधर्म बिलकुल हार गया था। उसको लगभग डेढ़ हजार साल हुए। बीच में संतों ने उसको जगाने की जोरदार कोशिश की। लेकिन वह क्या थी? **चोराच्या हातातील लंगोटी।** सभी जा रहा है, तो कम से कम लंगोटी तो रहे पास में! तो संतों ने भक्तिभाव रखो, यही कहा। भक्तिभाव रखो का मतलब क्या? उसको मैंने नाम दिया है 'मिनिमम धर्म', किमान धर्म। कम से कम श्रद्धा, भक्ति तो रख सकते हैं, नाम स्मरण तो कर सकते हैं। सभी खो गया है, तो जो रहा है थोड़ा, उसको पकड़े रहो। तो उस भक्ति के आधार से संतों के नीचे के वर्गों का उत्थान किया। हिन्दूधर्म का कम से कम मादा अपने हाथ में लेकर संतों ने भक्तिभाव प्रसारित किया। बाकी, ज्ञान की, कर्मयोग की बातें काहे करें, वह होने वाला नहीं, तो थोड़ा दान करो हाथ से और नामस्मरण करो, यह शिक्षा दी। संतों ने यह जो काम किया, वह बहुत बड़ा काम माना जायेगा। जहां सारा डूब रहा था, वहां उन्होंने थोड़ा बचाया। ❑

शराब मुक्त भारत सम्मेलन संपन्न

'शराब मुक्त भारत' राष्ट्रीय सम्मेलन 30 जनवरी, 2018 को भुवनेश्वर (ओडिशा) में संपन्न हुआ। सम्मेलन का नेतृत्व ओडिशा के साथ रमाकांत मंडल, अ. भा. नशाबंदी परिषद के महामंत्री महावीर त्यागी, सर्व सेवा संघ के पूर्व मंत्री विजय कुमार, बिहार प्रदेश नशाबंदी परिषद के अध्यक्ष चन्द्रभूषण, बिहार सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष कालिका सिंह, लोकसमिति के उषा, सीमा, उत्तर प्रदेश के सुल्तान सिंह आदि ने किया।

सम्मेलन में बिहार की तर्ज पर पूरे भारत में शराब मुक्त देश का निर्माण करने का संकल्प लिया गया। पूर्ण शराबबंदी, धर्म, नैतिकता, भारतीय संस्कृति और गरीब जनता के व्यापक हित और संविधान को प्रतिष्ठा देना ही पहला कदम है, ऐसा माना गया। सम्मेलन में करीब 10 हजार महिलाओं एवं पुरुषों ने एकजुटता का प्रदर्शन करते हुए ओडिशा सरकार से तत्काल शराब की बिक्री पर रोक लगाने की मांग की और कहा कि शराब के कारण ही बिहार की अपेक्षा ओडिशा में सड़क दुर्घटना, महिला अत्याचार, हिंसा आदि ज्यादा है। शराब से पैसे के विकास की बात बेईमानी है।

सम्मेलन में पूरे देश में नशाबंदी के लिए कार्य कर रहे सभी संगठनों को एक मंच पर लाने के लिए एक कमेटी का गठन किया गया, जिसकी अगली बैठक अप्रैल 2018 में दिल्ली में होगी। सम्मेलन में दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, झारखंड, बिहार, बंगाल, ओडिशा आदि राज्यों के प्रतिनिधियों ने भाग लेकर शराब मुक्त भारत बनाने का आवाहन किया। —चंद्रभूषण